ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-9* December-2021
Anthology : The Research

भारत में संघवाद एवं प्रान्तीय स्वायत्तताः एक समीक्षात्मक विश्लेषण

Federalism and Provincial Autonomy in India: A Critical Analysis

Paper Submission: 10/12/2021, Date of Acceptance: 21/12/2021, Date of Publication: 23/12/2021

रोमा कुमारी
शोधछात्रा,
राजनीति विज्ञान विभाग
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर,
बिहार, भारत

सारांश

भारत में संघीय व्यवस्था को अंगीकार की पृष्ठभूमि में न केवल भारतीय मिश्रित राजनीतिक-सामाजिक आन्दोलनों की भूमिका का महत्व है, बल्कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रणेताओं एवं देश के कर्णधारों की चिन्तन-दृष्टि में अन्तनिहित भारत की विविधता में एकता एवं राष्ट्र-निर्माण की राजनीति से सम्बन्धित है। किन्तु संविधान के क्रियान्वयन एवं संघीय ढांचे के अन्दर प्रान्तीय-स्वायत्तता के नाम पर प्रान्तीय नेतृत्वकत्राओं की कार्य-संस्कृति में अलगाववादी प्रवृतियों एवं नाजायज मांगों को उभरते देखा गया है, जो राष्ट्र निर्माण की दिशा में बाधा उत्पन्न करने का कार्य करती है। सच्चाई है कि संघीय व्यवस्था का आदर्श प्रतिमान एक सशक्त केन्द्रीय सरकार एवं अपेक्षाकृत स्वतंत्र व स्वायत्त प्रान्तीय सरकारों के अस्तित्व पर निर्भर करती है और यही तथ्य इस आलेख के प्रतिपादन का अमीष्ट है।

In the background of the adoption of federal system in India, not only the role of Indian mixed politico-social movements is of importance, but the politics of unity in diversity and nation-building of India embedded in the thinking-vision of the leaders of the Indian national movement and the country's leaders. is related toBut in the name of provincial-autonomy within the implementation of the constitution and the provincial-autonomy within the federal structure, separatist tendencies and illegitimate demands have been seen emerging in the work-culture, which acts as an obstacle in the direction of nation-building.The truth is that the ideal model of a federal system depends on the existence of a strong central government and relatively independent and autonomous provincial governments and this fact is the source of the rendering of this article.

मुख्यशब्दः संघवाद, अलगाववादी विचार, संरचनात्मक, करारनामा, सहयोगी संघवाद, क्षेत्रीय-क्षत्रपों।

Keywords: Federalism, Separatist Ideas, Structural, Covenant, Cooperative Federalism, Regional Satraps.

प्रस्तावना

ब्रिटिश शासन की दो सौ वर्षों की गुलामी की दौर से गुजरने के पश्चात् 15 अगस्त 1947 को जब भारत को आजादी मिली, तो भारत उन दिनों पहला नवोदित राष्ट्र हुआ, जहाँ संसदीय संघीय व्यवस्था को अपनाया गया, जो मुलतः भारतीय मिश्रित राजनीतिक सामाजिक आन्दोलनों की परिणति थी। कहना नहीं होगा कि अंग्रेजी शासन के दौरान तत्कालीन शासनाधिकारियों के द्वारा जिन सामाजिक एवं प्रशासकीय सुधारों की कवायद की जा रही थी, वे सभी के सभी 20वीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में एक सशकत्त राजनीतिक आन्दोलन के रूप में परिवर्तित होकर रह गया। स्मरणीय है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का करांची अधिवेशन (1931), मोतीलाल नेहरू रिपोर्ट (1928) सप्त कमेटी रिपोर्ट (1945), भारतीय संसदीय अधिनियम (1945) तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम (1947) जैसी व्यवस्थाओं की संविधान सभा में न केवल सर्वोपरिता देखी गई, बल्कि उन्हीं व्यवस्थाओं में अन्तनिहित मुल्यों एवं चिंतन दृष्टि को व्यवहारिकता प्रदान करते हुए संविधान सभा द्वारा स्वीकृत एवं निर्मित संविधान 26 जनवरी 1950 को भारतीय लोकतांत्रिक राजव्यवस्था के सफल संचालन के लिए अंगीकार किया गया। इस प्रकार भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के शासन-प्रशासन के सम्यक संचालन की मंशा के निमित्त संघीय व्यवस्था देश में प्रशासनिक व्यवस्था का आधार-स्तम्भ बना।

यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से भारत में संघीय व्यवस्था की प्रस्थापना के पक्ष में संविधान सभा में तत्कालीन कर्णधारों एवं स्वतंत्रता सेनानियों के विचारों एवं उनके वक्तव्यों में भी चिंतन एवं दृष्टिकोण समाहित रहा है।

डॉ. भीमराव अम्बेदकर जो संविधान सभा में ड्राफ्ट कमिटि के अध्यक्ष रहे थे, और तत्कालीन अन्तरिम सरकार के प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भी स्वतंत्र भारत में एकीकृत शासन व्यवस्था का ही पक्ष पोषण किया। किन्तु, सरदार बल्लभभाई पटेल संधीय शासन का पैरोकार रहे। साथ ही संधीय शासन का हिमायती होने के पीछे उनके द्वारा भारतीय रियायतों को एकीकृत करने के दौरान उत्पन्न चुनौतियों के समाधान से प्राप्त अनुभव था। इस तरह भारत में संधीय शासन की स्थापना के पीछे भारत की विविधता में एकता की स्थापना एवं राष्ट्र-निर्माण की राजनीति से सम्बन्धित चिंतन समाहित रहा है।

भारतीय संधीय व्यवस्था प्राचीन, मध्य और आधुनिक युग की शासकीय व्यवस्थाओं की उपज है, जिसे भारतीय संविधान ने औपचारिक ढांचा प्रदान करने की भूमिका का निर्वहन किया है। ब्रिटिश शासन के दौरान 1935 के पूर्व के सभी अधिनियमों में केन्द्रीय शासन की प्रस्थापना का ही बीज अन्तर्निहित रहा था, किन्तु 1935 के अधिनियम में सर्वप्रथम संघवाद की विशिष्टताएँ देखने को मिली, और इस संदर्भ में संवैधानिक गतिशीलता में वृद्धि का अहसास किया जाने लगा। स्मरणीय है कि समाज एवं राजनीति में अन्तर्निहित विविधता के मद्देनजर अंग्रेज सरकार भी संघीय ढांचे की जगह 'युनियन' शब्द की हिमायत कर रही थी। हमारे संविधान निर्माताओं ने भी 1946 के 'कैबिनेट मिशन प्लान' में निहित ढीली संघीय व्यवस्था को खारिज कर दिया क्यांेकि हमारे कर्णधारों के समक्ष नवोदित राष्ट्र की उभरती समस्याओं एवं यहाँ की विविधता में एकता की स्थापना का उद्देश्य था। साथ ही संविधान सभा में एकीकृत शासन व्यवस्था के संदर्भ में तत्कालीन प्रान्तीय प्रतिनिधियों की स्थिति केन्द्रीय नेतृत्व के समक्ष गौण होकर रह गई और संविधान सभा में मजबुत केन्द्र की प्रस्थापना के पैरोकारों के ठोस तर्क रहे थे। सरदार बल्लभ भाई पटेल ने राष्ट्र की एकता एवं अखंडता के लिए ही 492 देशी रियासतों को वुद्धिमत्ता पूर्ण ढंग से भारतीय संघ में शामिल किया था। इस तरह भारतीय संघवाद अमेरिकी संघवाद की तरह नहीं है और भारतीय संविधान में कहीं भी संघीय राज्य (Federal State)जैसे शब्द का प्रयोग देखने को नहीं मिलता है, बल्कि भारत को राज्यों का संघ कहा गया है।1 प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने संविधान में स्पष्टतः कह भी दिया है कि "राज्यों का संघ" शब्द का प्रयोग जान-बुझकर किया गया है- हालांकि, भारत को संघीय राज्य बनाया गया है, किन्तु यह संघीय स्वरूप राज्यों में परस्पर समझौते का परिणाम नहीं है। अतः किसी भी राज्य को इससे अलग होने का अधिकार नहीं है।"

भारतीय संघीय चिंतन एवं व्यवहारिकता के संदर्भ में अजय कुमार सिंह का दृष्टिकोण काफी समीचीन प्रतीत होता है, जिसमें उन्होंने कहा है कि भारत में संघीय ढांचा का स्वरूप ऐसा है जिसमें स्वतंत्रता एवं परस्पर निर्भरता का समन्वय (Framework of Independence and interdependence)है।"2 कहने का भाव यह है कि इस व्यवस्था में सभी इकाई न केवल स्वतंत्र होते हैं बल्कि आत्मनिर्भर होते हुए भी एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। यहाँ परस्पर निर्भरता का आशय है कि कोई भी इकाई बड़ी या छोटी एवं सबल या दुर्बल श्रेणी में नहीं होगी, बल्कि सभी समान केन्द्रीय इकाई का सम्पूर्ण प्रणाली पर पूर्ण नियंत्रण होता है।3 इसमें एक इकाई अत्यन्त बलशाली एवं अन्य दुर्बल होते हैं और दुर्बल पक्ष की स्वतंत्रता क्षीण होती है। इस तरह की व्यवस्था समानता रहित होती है और कृपादृष्टि की प्रवृति को बल मिलता है और इकाईयों की बृहतर इकाई पर निर्भरता होती है। इतना ही नहीं समान अधिकारों एवं लाभ के वितरण की संभावना भी क्षीण हो जाती है। परिणामतः इकाईयों मंे प्रिय पात्र बनने की होड़ उत्पन्न हो जाती है और संघीय प्रणाली के आगमन पर भी प्रश्न चिह्न खड़ा हो जाता है।

स्पष्ट है कि संघवाद का उद्देश्य सिर्फ शक्तियों का विभाजन नहीं बल्कि दायित्वों के निर्वहन की प्रस्थापना करना भी है, जिसमें सहमति के आधार पर दायित्व का वितरण होता है। प्रत्येक इकाई से अपेक्षा रहती है कि शासकीय संचालन में वह अपनी सशक्त साझेदारी व सहभागिता सुनिश्चित करेंगे। अतः जहाँ एकात्मकता वहिष्कार की मानसिकता है, वहीं संघवाद का अभिप्राय समीप लाकर सभी पक्षों को गतिशील एवं सक्रिय बनाना है। इससे प्रत्येक इकाई में शासन संचालन के गुण विकसित होते हैं। इतना ही नहीं स्वयं के लिए उचित निर्णय लेने की जिम्मेदारी होने के कारण अन्य पर आरोप लगाने की प्रवृति का ह्ास होता है। अन्तः निर्भरता के कारण मित्रता की भावना संचारित होती है। इस तरह भारतीय संघीय व्यवस्था की प्रस्थापना का चिंतन संविधानतः आजादी के दिनों की परिस्थितियों के परिवेश में भविष्योन्मुखी उभरने वाली चुनौतियों के समाधान से सम्बन्धित पृष्ठभूमि में अन्तर्निहित है। तत्कालीन परिस्थितियों में भारत की एकता एवं अखंडता सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य थे। अतः भारतीय संविधान निर्माताओं ने सर्वप्रथम विखराव की प्रवृति पर विराम लगाने का प्रयत्न किया। स्पष्ट है कि विखंडन पर लगाम लगाने के लिए न केवल एकात्मकता का समावेशन किया गया, बल्कि केन्द्र को शक्तिशाली बनाते हुए राज्यों की महत्ता को भी स्वीकार किया गया है।

किन्तु आज जब हम संविधान की क्रियात्मकता और भारतीय संघीय व्यवस्था के अन्दर स्वायत्ता के प्रश्न पर चिन्तन करते हैं तो यह तथ्य एक सच्चाई के रूप उभरकर आता है कि संघवाद कोई संस्था नहीं है, बल्कि सतत् प्रक्रिया है। साथ ही इस प्रक्रिया के स्वस्थ न होने के कारण विगत 72 वर्षों में समय-समय पर विविध रूपों में ग्रसित अलगाववादी प्रवृतियों को स्वायत्तता के नाम पर राजनीति एवं नाजाजय मांगों के रूप में उभरते देखा गया है। किन्तु प्रश्न उठता है कि आखिर अलगाववादी व प्रान्तीय स्वायत्ता से सम्बन्धित चुनौतियाँ भारतीय संघीय व्यवस्था की स्वस्थ परम्परा के मार्ग में क्यों उभरती रहती है, जो देश की एकता एवं अखंडता की रक्षा में बाधा उत्पन्न करने का प्रयास करती है। जबाव बिल्कुल स्पष्ट है कि इस तरह की चुनौतियाँ संघवाद के संरचनात्मक प्रावधानों एवं प्रान्तीय नेताओं की कार्य संस्कृति की परिणति होती है। राजनीति विज्ञान की यह स्वीकृत मान्यता है कि जब किसी संघीय व्यवस्था बाले देश की केन्द्रीय सरकार कमजोर हो जाती है तो अपकेन्द्रीय (Centrifugal Forces)प्रवृतियाँ बढ़ने लगती है और तब जोर-शोर से प्रान्तीय स्वायत्तता की आबाज सुनाई देनी लगती है। भारतीय संघीय व्यवस्था भी इसका अपवाद नहीं रह पाया है। भारत में यह आवाज संविद सरकारों की दौर में उठती रही है और अपकेन्द्रीयता के समर्थकों ने 'सरकारिया आयोग' एवं जनतंत्र तथा क्षेत्रीय एवं सांस्कृतिक आधारों पर केन्द्र की शक्तियों को प्रान्तों के लिए हस्तांतरण की बात किया। साथ ही संविद सरकार की स्थिति तो और ही नाजुक होती है, क्योंकि इस सरकार में सहभागिता करने वाले अधिकांश राजनीतिक दल क्षेत्रीय

दल हुआ करता है और इसलिए प्रान्तीय स्वायत्तता की मांग संधीयता की दुहाई देकर प्रान्तीय सरकारों को मजबूत बनाने की उनकी मंशा होती है। आज के हालात में पश्चिम बंगाल की तृणमुल कांग्रेस ममता बनर्जी एवं महाराष्ट्र की संविद सरकार के मुखिया उद्धव ठाकरे की राजनीतिक सोच एवं कार्यप्रणाली में इस प्रवृति का आसानी से आकलन किया जा सकता है।

संघवाद से सम्बन्धित राजनीतिक सिद्धान्तों के संदर्भ में भारतीय लोकतंत्र में प्रान्तीय स्वायत्ता के समर्थन में दिये जाने वाले तर्कों को हमेशा से निश्चित रूप में राष्ट्र-निर्माण (Nation Building)की आकांक्षाओं के प्रतिकूल ही कहा जा सकता है। इस संदर्भ में A.V. Dicey का पुराना सिद्धान्त है जो 1940 तक राजनीतिक वैज्ञानिकां के द्वारा स्वीकृत रही थी। यह सिद्धान्त संघीय शासन को विभिन्न प्रान्तीय सरकारों एवं केन्द्र सरकार के बीच एक करारनामा या Contract मानता है, और यह बतलाता है कि जब छोटे-छोटे राज्य अपनी आर्थिक, सैनिक एवं सुरक्षात्मक उद्देश्यों में सफल नहीं होते हैं तो वे आपस में मिलकर संघ का निर्माण करते हैं। इस संघ निर्माण में छोटे-छोटे राज्य प्रान्त के रूप में काम करते हैं और ये अपनी बाह्य-संप्रभुता अपने हित में त्यागते हैं। इसलिए आन्तरिक संप्रभुता के मामले में ये स्वायत्त है और इसी स्वायत्ता का संरक्षण संघवाद का सही स्वरूप है। 1885 से Dicey की संघवाद सम्बन्धी मान्यताओं को 1946 तक K.C. Where ने अपनी पुस्तक" Federal Government" में दुहराने का काम किया।4 किन्तु वास्तविकता यह है कि राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त में होने वाले क्रान्तिकारी परिवर्तन ने संघवाद के अर्थ में व्यापक परिवर्तन ला दिया।

आज समय के बदलते परिदृश्य में संघवाद किसी करारनामे और उसपर आधारित प्रान्तीय स्वायत्ता को राष्ट्र-निर्माण की कीमत पर संरक्षित रखने का सिद्धान्त नहीं है, बल्कि संघवाद 'राज्य-निर्माण' (State-building)तथा राष्ट्र-निर्माण (Nation-building) का सिद्धान्त व माध्यम है। स्मरणीय है कि Levingston ने संघवाद को एक'Continumm' माना है, जो"an institutionalization of compromises between the demands of autonomy and the desire for integration" का प्रतिनिधित्व करता है। उसी प्रकार William Riker ने Dicey तथा K.C. Wheare की कलासिकी परिभाषाओं में एक सूक्ष्म किन्तु निर्णायक तथ्य को शामिल करते हुए लिखा है कि संघवाद का अर्थ-"A government of federation and a set of governments of members units in both kinds of governments rule over the same territory and people and each kind has the authority to make some decisions independent of each other.5 इस प्रकार संघवाद का मूल तथ्य है कि दोनों तरह की सरकारें समान भूभाग एवं समान जनता पर शासन करती है और उन्हें एक दूसरे से स्वतंत्र रूप में Some decisions (कुछ निर्णयन) लेने की शक्ति है। यह 'Some decisions'वो है, जो समाज-कल्याण एवं राष्ट्र-निर्माण के लिए हितकारी हों। इन्हीं मान्यताओं पर सहयोगी संघवाद या Cooperative federation का सिद्धान्त आधारित है। वस्तुतः संघवाद की इसी संक्षिप्त सैद्धान्तिक व क्रियात्मक भूमिका के आलोक में भारत में वर्तमानकाल में चलने वालीState autonomy (प्रान्तीय स्वायत्तता) सम्बन्धी बहस का मूल्यांकन किया जा सकता है।

यों तो वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने जम्मु-कश्मीर के संदर्भ में आरोपित ऐतिहासिक भूल धारा 370 को समाप्त करके भारतीय संधीय व्यवस्था में अन्य प्रान्तों की तरह उसे भी प्रान्त का दर्जा प्रदान कर दिया है। किन्तु इतिहास गबाह है कि भारत में संघवाद एवं प्रान्तीय स्वायत्ता की उफान जम्मु कश्मीर में ज्यादा देखी गई, क्योंकि जम्मू-कश्मीर को विशेष दर्जा प्रदान कर दिया गया था। यह सच्चाई है कि भारतीय संघवाद के सफल संचालन के मार्ग में न केवल वहाँ के क्षत्रपों ने अवरोध व अलगाव को बढ़ाने का काम किया, बल्कि विकास एवं प्रगति को भी अवरूद्ध कर दिया था। साथ ही "सत्ता की राजनीति" एवं पाकिस्तान परस्त चिंतन की अभिवृद्धि कर रहे थे, जिसका दंश भारत को आंतकवाद में वृद्धि एवं अलगाववादी के घटनाओं की निरन्तर वृद्धि के संदर्भ में झेलना पड़ा। इतना ही नहीं जम्मु-कश्मीर के नेतृत्वकत्राओं ने अपनी इसी चिन्तनधारा एवं सोच के चलते जम्मु कश्मीर विधानसभा के द्वारा स्वायत्ता से सम्बन्धित प्रस्ताव भी पारित कर देने का इतिहास रचा था और उनकी स्वायत्ता सम्बन्धी प्रस्ताव का सीधा सम्बन्ध संघवाद सम्बन्धी Dicey की व्यक्तिवादी मान्यताओं पर आधारित रहा है। यह प्रस्ताव संविधान की धारा 370 के मुताबिक जम्मु-कश्मीर को प्रदत्त विशेष स्थिति को 1953 के पूर्व लौटाने की मांग से सम्बन्धित रहा था। जम्मु-कश्मीर के नेतृत्वकत्राओं एवं विधानसभा द्वारा पारित 'स्वायत्ता सम्बन्धी प्रस्ताव' में अन्तनिहित मंशा एवं लक्ष्य पर गौर किया जाय तो सीधा-साधा मतलब यह था, कि केन्द्रीय संसद केवल सुरक्षा संचार एवं विदेशी-सम्बन्धों पर ही कानून बना सकती है तथा अन्य मामलों में कानून बनाने एवं प्रशासन करने की पूरी छूट जम्मु-कश्मीर की होगी। इसका अभिप्राय यह था कि 1953 से जब तक जम्मु-कश्मीर से धारा 370 समाप्त नहीं किया गया था- उस समय तक संसद ने जितने कानून बनाये तथा केन्द्रीय सरकार ने जितने प्रशासकीय निर्णय लिये, वे सभी समाप्त कर देने होंगे। साथ ही साथ राज्यपाल के पद को समाप्त कर फिर से कश्मीरी जनता को अपने सारे रियासत को चुनने की शक्ति मिलेगी। साथ ही भारत सरकार पूर्ववत् शेष भारतीयों की सुविधा की कीमत पर अरबों रुपये कश्मीर को सहायता के रूप में देती रहेगी ताकि वह भारत का अंग बना रहे। इस तरह यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा, कि संविधान का कार्य 1957 में पूर्ण हुआ था तथा उसी समय जम्मु-कश्मीर से Artical 370 हट जाना चाहिए था। यही तथ्य जम्मु-कश्मीर के अलगाववादी राजनीति से अन्त्रग्रस्त नेताओं के द्वारा भ्रामक प्रचार के माध्यम से विशेष उपबंध के तौर पर प्रचारित किया जाता रहा जो भारतीय संघवाद के संदर्भ में सभी तरह के जारी समझौतों व दुर्भाग्यपूर्ण राजनीति का उदाहरण रहा है।

स्मरणीय है, कि नरेन्द्र मोदी के द्वारा जम्मु-कश्मीर से धारा 370 हटाने के पूर्व एवं 2013 तक भारतीय संविधान के मात्र 260 अनुच्छेदों को जम्मु-कश्मीर में लागू किया जा सका था। 118 संवैधानिक संशोधन भी किये गये थे, किन्तु जम्मु-कश्मीर अनेकानेक लोक कल्याणकारी योजनाओं से मरहूम होकर रह गया था तथा धारा 370 के आड़ में कुछ ऐसे प्रावधान भी जोड़े गये थे, जो भारतीय संविधान की मूल भावना से मेल नहीं खाते थे, जबकि जम्मू एवं कश्मीर का विलय सम्पूर्ण एवं अंतिम भारत के साथ रहा था।6
भारत में जम्मु-कश्मीर सरकार की 'स्वायत्ता की मांग' केवल जम्मु-कश्मीर तक ही सीमित नहीं रहा था, बल्कि इसका समर्थन ऐसे प्रान्तों के द्वारा भी अविलम्ब कर दिया गया था, जहाँ भाषाई क्षेत्रीय एवं धार्मिक पृथकता का भाव ज्यादा है। स्मरणीय है कि आसाम, पंजाब तथा तमिलनाडु के मुख्यमंत्रियों ने भी समर्थन कर दिया और धारा 370 को भारत के सभी प्रान्तों में विस्तृत करने की मांग को बुलन्द करने का इतिहास बना डाला था। स्पष्ट है कि इन क्षेत्रीय भावनाओं के आधार पर संघवाद की वकालत करने का मतलब राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया को बाधित करना है। भारत जैसे तृतीय संसार के देशों की सबसे बड़ी समस्या आर्थिक विकास एवं तकनीकी क्षमता में वृद्धि है।
किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि प्रान्तों की स्वायत्ता को अर्थहीन माना जाय। सच तो यह है कि संधीय व्यवस्था में स्वायत्तता की मांग उठना स्वाभाविक है। किन्तु मांग किस परिस्थिति में और किस कारण उठायी गई है- यह समझना जरूरी होता है। स्वतंत्र भारत में प्रशासकीय सुधारों की जो अनवरत प्रक्रिया पूर्ववर्ती कांग्रेस सरकारों के दौरान चली थी, उसमें क्षेत्रीय विषमताओं और विशेषकर भौगोलिक एवं आर्थिक प्रगति को सही ढंग से नहीं देखने की प्रवृत्ति रही थी, और "तुष्टीकरण की नीति" तत्कालीन सरकारों की कार्यसंस्कृति थी। कहने का तात्पर्य यह है कि कांग्रेस की कार्य संस्कृति में आर्थिक विकास की प्रकृति में एकीकृत भारत से सम्बन्धित विकास एवं प्रगति की कार्य संस्कृति की उपेक्षा सन्निहित रही है। परिणामस्वरूप पश्चिमी एवं दक्षिणी भारत में आर्थिक विकास की गतिशीलता पूर्वी भारत में देखने को नहीं मिल सकी। केन्द्र सरकार की नीतियों में जहाँ राजनीतिक संघवाद पर प्रक्रियात्मक जोर रहा वहीं दूसरी और आर्थिक संघवाद की उपेक्षा रही है। इस तरह स्वायत्ता को जब आर्थिक संघवाद के नजरिये से नेतृत्वकत्त्राओं की कार्यप्रणाली में देखने की प्रवृति का जागरण होगा, तो स्वायत्ता का भाव पृथक्कता से सम्बद्ध नहीं होगा एवं राष्ट्र-निर्माण को गतिशीलता प्राप्त होगी।William Riker ने संघवाद सम्बन्धी अपनी परिभाषा में संघ की मूलभूत पहचान यह बतलाया है कि जहाँ दोहरी सरकार की दोनों सरकारों को "एक दूसरे से स्वतंत्र होकर कुछ निर्णय लेने की क्षमता है।"11 इन "कुछ निर्णयों" को लेने की स्वतंत्र क्षमता का अर्थ विस्तार किया जा सकता है और उसके अन्र्तगत उन्हें आर्थिक, प्रशासकीय एवं क्षेत्रीय समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण शक्तियाँ दी जा सकती है। इन शक्तियों का प्रयोग इस प्रकार हो, ताकि सम्पूर्ण देश की एकता अक्षुण्ण बनी रहे एवं प्रान्तों की क्षेत्रीय उम्मीदों का पोषण भी हो सके जो "सहयोगात्मक-संघवाद" का निहितार्थ है। इसके अलावे प्रान्तीय स्वायत्ता के साथ ही स्थानीय संस्थाओं को भी मजबूत बनाना आवश्यक है।

उद्देश्य

1. भारतीय संघीय व्यवस्था की पृष्ठभूमि का विश्लेषण करना।
2. भारतीय संघीय व्यवस्था की प्रकृति व स्वरूप का परीक्षण करना।
3. भारतीय संघीय व्यवस्था मंे समय-समय पर बदलती स्थिति व प्रतिकृति ;चंजजमतदद्ध की व्याख्या करना।
4. प्रान्तीय नेताओं की राजनीतिक-संस्कृति में अलगाववादी व स्थिर सत्ता की राजनीति से सम्बन्धित मूल्यों का आकलन करना एवं संघीय व्यवस्था के आदर्शस्वरूप की प्रस्थापना के निमित्त कतिपय सुझावों को दर्ज करना।

निष्कर्ष

संक्षेप में एक सही संघवाद के भीतर एक सशक्त केन्द्रीय सरकार और अपेक्षाकृत स्वायत्त प्रान्तीय एवं स्थानीय सरकारों का अस्तित्व होना चाहिए। इससे भी बढ़कर इन तीनों सरकारों का लक्ष्य राष्ट-निर्माण होना चाहिए। इस संदर्भ में जहाँ एक ओर प्रान्तीय एवं स्थानीय सरकारों की स्वायत्ता में शक्ति के विकेन्द्रीकरण के द्वारा वृद्धि की जाय, वहीं दूसरी ओर सशक्त राष्ट्र-निर्माण के लिए केन्द्रीय सरकार को निम्नलिखित विषयों पर कानून बनाने एवं प्रशासन करने की शक्तियां भी होनी चाहिए:-

1. अन्त्रप्रान्तीय कल्याण को ध्यान में रखते हुए प्राकृतिक संसाधनों के विकास का जिम्मा केन्द्र सरकार को होनी चाहिए। इसका एक उदाहरण जलसंसाधन का Water resources विकास है।
2. प्रान्तों के बीच होने वाले विवादों और विशेषकर सीमा सम्बन्धी विवाद।
3. वैसे अपराधों का नियंत्रण जो सारे देश की एकता और अस्मिता को प्रभावित करते हैं। जैसे- आतंकवादी आक्रमण, स्त्रियों की स्वतंत्रता का हनन, अल्पसंख्यकों के हितों का क्षरण इत्यादि।
4. सभी नागरिकों के बीच भेदभाव का अन्त एवं समानता की स्थापना। खासकर धार्मिक एवं भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों की सुरक्षा
5. प्रान्तों के बीच व्यापार स्वतंत्र एवं अवाधित व्यापारिक सम्बन्धों की स्थापना तथा दूसरी बाधाओं की समाप्ति।
6. राष्ट्र की एकता बनाये रखने हेतु किसी भी प्रान्त में सेना को भेजने की शक्ति।

संक्षेप यह कहा जा सकता है, कि संघवाद कोई "State Pattern" or "Design" नहीं, बल्कि राष्ट्र निर्माण की एक प्रक्रिया है। आवश्यकता इस बात की है कि केन्द्र सरकार आर्थिक एवं सांस्कृतिक संघवाद की प्रवृति को सही दिशा एवं दशा प्रदान करने की भूमिका निर्वहन करे। इसी कार्य संस्कृति के माध्यम से भारतीय संघीय ढांचे को क्षेत्रीय एवं अलगाववादी मानसिकता से ग्रस्त स्वायत्ता सम्बन्धी राजनीति एवं नजायज मांगों से सुरक्षित रखते हुए National building की प्रक्रिया को सही दिशा प्रदान किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. *भारतीय संविधान का अनुच्छेद (1)*
2. *अजय कुमार सिंह, फेडरलिज्म एण्ड स्टेट फॉरमेशन, बी.डी. दुआ और एम.पी. सिंह (सं.), इंडियन फेडरेलिज्म इन द न्यू मिलेनियम, मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003.*
3. *के. के. सेठी, संघवाद तथा भाषा नीति "लोकप्रशासन (संघवाद विशेषांक)', 2012, वर्ष-4, अंक-2, पृ.-173.*
4. *कार्ल. जे. फ्रायडरिक; ट्रेन्डस आॅफ फेडरलिज्म इन थ्योरी एण्ड प्राकटिस, लंदन, ओ.यु.पी., पृ.-77.*
5. *डबलु. एच. राइकर, "फेडरलिज्मः ओरीजन, आॅपरेशन, सिग्नीफिकेंस, बोस्टन, लिट्ल ब्राउन, 1964.*
6. *योजना, फरवरी, 2015, पृ.-24.*
7. *पूर्व उद्धृत, पृ.-24.*